अध्याय 2

शरतचन्द्र और प्रेमचंद के विचार

i) शरतचन्द्र की स्वाधीनता सम्बंधी अंतर्दृष्टि

ii) प्रेमचंद की दृष्टि में स्वराज्य का अर्थ और स्वरूप

iii) विचारों में क्रमिक विकास

शरतचन्द्र की स्वाधीनता संबंधी अंतर्दृष्टि

शरतचन्द्र की दृष्टि में स्वाधीनता का अर्थ है रूढ़ संस्कृति से स्वतंत्र होना, अंधविश्वासों से स्वतंत्र होना तथा जर्जर हो चली हिन्दू परंपराओं से स्वतंत्र होना। इसीलिए शरतचन्द्र के पात्रों को हम सामाजिक बंधनों के विरुद्ध विद्रोह करते हुए पाते हैं। ऐसा नहीं है कि शरतचन्द्र ने राजनीतिक स्वतंत्रता जैसे ज्वलंत प्रश्न को बिलकुल दरकिनार कर दिया है। राजनीतिक स्वतंत्रता तो उस युग की पहली मांग थी। शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों में राजनीतिक स्वाधीनता के प्रश्न को भी उठाया है।

वैसे स्वाधीनता आंदोलन को लक्ष्य करके बांग्ला साहित्य में काफी उपन्यास लिखे गये हैं। यह परंपरा हम बंकिमचन्द्र से लेकर रवीन्द्रनाथ तक पाते हैं। बंकिमचन्द्र का 'आनंदमठ' तथा रवीन्द्रनाथ का 'चार अध्याय' इसी शृंखला की कड़ी है।

बंकिमचन्द्र ने "सामाजिक रूढ़िवाद और प्राचीन भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक विशिष्टता के आधार पर राष्ट्रीय आंदोलन का निर्माण करना चाहा है। बंकिमचन्द्र ने अपने समाज के गौरवशाली अतीत को निहारा और अपनी मातृभूमि के पुनर्जीवन के लिए राष्ट्रीय गान को मुक्त कंठ से गाया है। यह युग राजनीतिक क्रांति और सामाजिक प्रतिक्रिया के संगम का प्रतीक था। बंकिम सामाजिक प्रतिक्रिया के साथ राष्ट्रीयता के मेल का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके उपन्यास इस विश्वास की अभिव्यक्ति हैं कि भारतीय स्वातंत्र्य का मार्ग देश के कीर्तिमुक्त अतीत के पुनरुद्धार में है। इसलिए उनकी कृतियों में आदि मध्यवर्ग के अराष्ट्रीयकरण के विरुद्ध विद्रोह का समावेश है।"[1] 'दुर्गेशनंदिनी', 'कपालकुंडला', 'विषवृक्ष', 'कृष्णकांतेर विल' आदि इनकी प्रमुख रचनाएं हैं। 'आनन्दमठ' में हम बंकिमचन्द्र की राजनीतिक विचारधारा से परिचित होते हैं। बंकिमचन्द्र ने सन् 1882 में 'आनन्दमठ' का सृजन किया। 'आनंदमठ' में उत्तर बंगाल के 1773 ई. के 'संन्यासी विद्रोह का वर्णन है। बंकिमचन्द्र द्वारा रचित इस उपन्यास में देशभक्ति की गाथा है। भारत का राष्ट्रीय गीत 'वन्दे मातरम्' इसी उपन्यास से लिया गया है। संन्यासी आंदोलन के अलावा इस उपन्यास

में हम बंगाल के अकाल की पृष्ठभूमि को भी पाते हैं। इस उपन्यास की क्रांतिकारी विचारधारा ने सामाजिक व राजनीतिक चेतना को जागृत करने का कार्य किया। 'आनंदमठ' में जिस काल खण्ड का वर्णन किया गया है, वह हंटर की ऐतिहासिक कृति 'एन्नल आफ रूरल बंगाल', ग्लेग की 'मेक्वाइर ऑफ द लाइफ ऑफ वारेन हेस्टिंग्स' और उस समय के ऐतिहासिक दस्तावेज में शामिल तथ्यों में काफी समानता है।

बंकिमचन्द्र भारतवर्ष के प्रथम ऐसे उपन्यासकार हैं जिनकी रचनाओं ने जनमानस को राष्ट्रीय नवजागरण का संदेश दिया तथा यह कार्य उन्होंने उस समय किया जब भारतवर्ष की जनता अपनी अस्मिता एवं अपने गौरव को विस्मृत करके स्वयं को परवश तथा असहाय महसूस कर रही थी। बंकिमचन्द्र हिन्दू–मुसलमानों की एकता के प्रबल पक्षधर थे। 'बंगदर्शन' में वे लिखते हैं कि बंगाल हिन्दू–मुसलमानों का प्रदेश है, अकेले हिन्दुओं का नहीं। पर आजकल हिन्दू–मुसलमान अलग हैं, आपस में सहृदयता नहीं है। बंगाल की भलाई के लिए जरूरी है कि हिन्दू–मुसलमान में एकता हो। जब तक उच्च वर्ग के मुसलमानों में यह भावना रहेगी कि दूसरे मुल्क के हैं, बांग्ला उनकी भाषा नही है, वे न तो बांग्ला लिखेंगे, न सीखेंगे, सिर्फ उर्दू–फारसी से काम चलाएंगे, तब तक एकता स्थापित नहीं हो सकती क्योंकि राष्ट्रीय एकता की जड़ में भाषा की एकता होती है। (राजसिंह उपन्यास , पृ.41) में वे लिखते हैं "हिन्दू होने से अच्छा नहीं होता, मुसलमान होने से ही खराब नहीं होता अथवा हिन्दू होने से ही बुरा नहीं होता, मुसलमान होने पर ही अच्छा नहीं होता। अच्छा–बुरा दोनों में बराबर ही है। दूसरे गुणों के साथ जो धार्मिक है हिन्दू हो या मुसलमान निकृष्ट है।" उनके इस कथन से स्पष्ट होता है कि वे मूलतः राष्ट्र भक्त एवं मानवतावादी थे, तथा अच्छे और बुरे होने की कसौटी भी उनकी यही थी। बंकिमचन्द्र मात्र एक साहित्यकार ही नहीं थे, बल्कि भारत के राष्ट्रीय नवजागरण के पुरोधा और अभ्युत्थान के महानायक भी थे।

रवीन्द्रनाथ ने अपने आरंभिक लेखन में शिक्षित वर्ग की कामनाओं और अभिलाषाओं का चित्रण किया। 'गोरा' (1910 ई.) में एक नवीन शक्ति एवं जीवन का स्पंदन है। "इसमें धार्मिक संप्रदायों के तर्क–वितर्क, सामाजिक परंपराएं, राष्ट्रीयता

और देश भक्ति प्रचुरता से मिलती है। वाद–विवाद को तीक्ष्ण बुद्धि और तीव्र भावकुता के उत्कृष्ट मिश्रण द्वारा निभाया गया है। उपन्यास का नायक गोरा स्वतंत्रता के लिए उत्कंठित और अपनी सामाजिक तथा राजनीतिक दासता के विरुद्ध संग्राम कर रही भारत की आत्मा का प्रतीक है। वह निम्न मध्यवर्ग से संबंधित है जो राष्ट्रीय आंदोलन (1905–1910 ई.) के प्रथम चरण के समय से राजनीतिक रूप से जाग्रत हो गया था।''[2]

शरतचन्द्र पर इन दोनों (क्रमशः बंकिमचंद्र और रवीन्द्रनाथ) लेखकों के प्रभाव को साफ देखा जा सकता है। रवीन्द्र जयंती के मौके पर शरतचन्द्र ने गुरुवर लिखित 'चोखेर बाली' का उल्लेख किया था। इस उपन्यास में संस्कारों से मुक्ति का जो परिचय मिलता है, उसका पूर्ण विकास हम शरतचन्द्र के साहित्य में पाते हैं। हम शरतचन्द्र की मौलिकता का प्रकाश वहां पाते हैं जहां उन्होंने समाज में प्रचलित नीतियों के विरुद्ध विद्रोह किया है। शरतचन्द्र ने सामाजिक समस्याओं की कोई मीमांसा करने की चेष्टा नहीं की है। यहां तक कि उन्होंने शेष प्रश्न का भी उत्तर नहीं दिया है। शरतचन्द्र का लेखन पीड़ितों, पतितों के पक्ष को उजागर करता है। उनका पक्ष लेकर शरतचन्द्र ने प्रश्न किया है कि जो समाज क्षमा करना नहीं जानता, सामंजस्य नहीं जानता, कोई उपलब्धि नहीं कर सकता, उस समाज का गौरव कहां है? ऐसे समाज से अगर 'विराजबऊ' (बिराजबहू) कुलत्याग करती है, तो क्या बुरा करती है।

'बड़ी दीदी' (बड़ी बहन) के सृजन के साथ ही शरतचन्द्र आलोचना के घेरे में आ गए। इस उपन्यास के प्रकाशित होते ही रुढ़िवादी बंग समाज में एक खलबली सी मच गयी। इससे शरतचन्द्र को काफी विरोध झेलना पड़ा। 'बड़ी दीदी' में एक 'विधवा नारी' के हृदय में फिर से रागात्मिका वृत्ति का प्रादुर्भाव दिखाया गया है। स्त्री के विधवा होते ही उसके मन में इच्छा, वासना खत्म नहीं हो जाती, बल्कि अकेलापन, घुटन और बढ़ जाती है। शरतचन्द्र को इस बात का इल्म था। विधवा नारी के जीवन की इस समस्या को शरतचन्द्र ने आगे चलकर 'देहाती समाज' (पल्ली समाज) में विस्तृत रूप से दर्शाया है।

'बड़ी दीदी' के बाद 'बिराजबऊ' (बिराजबहू) में शरतचन्द्र अधिक मंजे हुए कलाकार नजर आते हैं। शिल्प की दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट कोटि का उपन्यास है।

'बिराजबहू' में शरतचन्द्र ने बिराज और नीलाम्बर के प्रेममूलक जीवन आख्यान के द्वारा बंकिम की धारा का अनुसरण किया है। [3]

'देवदास' एक असफल प्रेम गाथा है। यह शरतचन्द्र का बहुचर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास में शरतचन्द्र ने दर्शाया है कि विवाह की मर्यादा तथा सतीत्व का पालन करते हुए भी किसी स्त्री के हृदय में किसी और के प्रति प्रेम–निवास हो सकता है। इससे सतीत्व को कोई हानि नहीं पहुंचती है। इसके अलावा देवदास में जाति–भेद और कुलीनता की समस्या को भी उद्‌घाटित किया गया है। देवदास और पार्वती दोनों बाल्य सहचर थे। कुलीनता के अभिमान के कारण दोनों का मिलन संभव न हो सका। पार्वती को अनमेल विवाह की प्रचंड पीड़ा सहनी पड़ती है और देवदास की जीवन यात्रा नष्ट–भ्रष्ट हो जाती है। जातिभेद और कुलीनता की समस्या वस्तुतः बंगाल की ज्वलंत समस्या थी। देवदास के अलावा 'देहाती समाज' और 'वामुनेर मेये' (ब्राम्हण की लड़की) में भी हम यही समस्या देखते हैं।

'लेन–देन' में नारी की अमोघ शक्ति का चित्रण है। 'परिणीता' शरतचन्द्र की त्रिकोणात्मक प्रेम गाथा है। इस उपन्यास में प्रेम प्रसंग के अलावा जातिगत तथा वर्गीय समस्या–संघर्ष को उद्‌घाटित किया गया है।

'गृहदाह' शरतचन्द्र की एक 'ट्रेजिक' गाथा है। इसमें जीवन के नाना रंगों, और पक्षों को दर्शाया गया है।

'पल्ली समाज', 'पंडितजी', 'अरक्षणीया' में हम ग्रामीण समस्याओं से रू–ब–रू होते हैं। ग्रामीण समाज की विशेषता और शोषित व्यक्तियों के जीवन के विविध रूप इन उपन्यासों में दृष्टिगोचर होते हैं।

'स्वामी' में हम पुनः एक नारी (सौदामिनी) के संघर्ष का वर्णन पाते हैं। इसका कथानक सरल होने पर भी पाठक को पर्याप्त बौद्धिक व्यायाम कराता है। 'वैकुण्ठ के बिल' में संपत्ति के कारण रिश्तों में पड़ती दरार को देखा जा सकता है।

इन सामाजिक समस्याओं के अलावा हम शरतचन्द्र के कुछ उपन्यासों में युगीन राजनीतिक हलचलों को देख सकते हैं। इस संदर्भ में 'पथेरदाबी' (पथ के दावेदार) उनका प्रतिनिधि उपन्यास है। यह उपन्यास शुद्ध राजनैतिक दृष्टि से लिखा गया है। 'पथ के दावेदार' में 1920–25 ई. के स्वाधीनता आंदोलन की गूंज सुनाई पड़ती है। यही वह समय था जब उग्रपंथी आंदोलनकारी अपने पूरे उफान पर थे।

चन्द्रशेखर, भगतसिंह आदि के नेतृत्व में चरमपंथी (उग्रपंथी) अपने कार्यों को सार्थक अंजाम दे रहे थे। यद्यपि शरतचन्द्र गांधीवादी थे, किंतु जैसा पहले भी कहा जा चुका है कि इन विप्लवियों के लिए उनके मन में अपार स्नेह था। 'पथ के दावेदार' इसी बात का प्रमाण है। यह उपन्यास विप्लवियों के जीवन, उद्देश्य, कर्म क्षमता आदि को बड़े सुंदर एवं सुनियोजित ढंग से चित्रित करता है। एक विप्लवी के लिए स्वाधीनता ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए। उसके लिए व्यक्तिगत प्रेम, पारिवारिक संबंध आदि कुछ भी मायने नहीं रखता है। उपन्यास के नायक सव्यसाची को हम इन्हीं तथ्यों का उद्‌घाटन करते हुए पाते हैं। 'पथ के दावेदार' के लिखे जाने से लेकर इसके प्रकाशन तक की कथा बड़ी रोमांचकारी है। उपन्यास का पहला अंक 'बंगवाणी' में 1923 ई. (फरवरी) को छपा था। 'बंगवाणी' का प्रकाशन उन दिनों विख्यात आशुतोष मुखर्जी के लड़के उमाप्रसाद मुखर्जी करते थे। उपन्यास का अंतिम अध्याय तीन साल बाद (1926 ई.) में छपा। यह उपन्यास कुल 24 किस्तों में छापा गया। 'कुमुदचंद्र राय' (बंगवाणी–व्यवस्थापक), श्यामाप्रसाद तथा रमाप्रसाद को एक–एक अंकों के लिए शरतचन्द्र के यहां काफी चक्कर काटने पड़े। एक लम्बे समय के बाद उपन्यास का अंतिम अंक छपा। उपन्यास की लोकप्रियता देखकर प्रकाशक इसे पुस्तक रूप में छापना चाहता था, किन्तु उन्हें पता था कि ब्रिटिश सरकार ऐसा होने नहीं देगी। अतः प्रकाशकों ने सरकार की आंखों में धूल झोंकने के लिए चाल चली। इस उपन्यास के अंतिम अंक (अप्रैल, 1926 में) में उन्होंने 'क्रमशः' लिख दिया। चाल पूर्णतः कामयाब रही। पुलिस यह समझती रही कि यह उपन्यास अभी भी समाप्त नहीं हुआ, और इसी बीच पुस्तक प्रकाशित करने का सारा इंतजाम पूरा कर लिया गया। उपन्यास को एम. सी. सरकार एंड संस के मालिक सुधीर सरकार प्रकाशित करना चाहते थे किन्तु जब उन्होंने उपन्यास पढ़ा तो डर गए। अंग्रेजी हुकूमत से सीधी टक्कर लेने की वे हिम्मत नहीं कर पाए। अंततः स्वयं रमाबाबू ने इस उपन्यास को छापने का दायित्व अपने सिर ले लिया। प्रकाशन की समस्या सुलझी तो प्रेस वालों ने समस्या खड़ी कर दी। बहुत प्रयत्न के बाद 'काटन प्रेस' में इसे छापने का प्रबंध हुआ। प्रकाशक की जगह उमाप्रसाद का नाम दिया गया। उपन्यास के बाजार में आते ही सरकार तुरंत हरकत में आ गयी और मुकदमा करने को आतुर हो उठी। उस समय सरकारी वकील श्री 'तारकनाथ साधु थे। वे स्वयं

साहित्य में काफी रुचि लेते थे। तथा शरतचन्द्र एवं उमाप्रसाद से उनका घनिष्ठ संबंध था। किसी तरह उन्होंने मामले को दबाया किन्तु तनाव का माहौल काफी दिनों तक बना रहा। विप्लवियों के बीच यह उपन्यास 'बाइबिल' की भांति पूजा जाने लगा। क्रांतिकारियों के घर पर धर्मग्रंथों के स्थान पर (पवित्र स्थान पर) 'पथेरदाबी' को रखा जाने लगा।

'शेष प्रश्न' में भी हम आंशिक रूप से विप्लवियों की जिंदगी का वर्णन पाते हैं। 'राजन' (उपन्यास का एक पात्र) एक विप्लवी है, किन्तु उसके गृह में विप्लवियों से संबंधित कोई वार्ता नहीं होती है। विप्लवियों के आचरण आदि को इस उपन्यास में दर्शाया गया है। राजेन्द्र एक प्रखर चरित्र वाला व्यक्ति है। दूसरों के लिए वह हमेशा मर मिटने को तैयार रहता है। उसका कार्यकलाप दूसरों से भिन्न व स्वतंत्र है। बिना प्रयोजन वह अपना मुँह नहीं खोलता है। सबके समक्ष अपने आप को जाहिर नहीं करता है और अपने कर्तव्य मार्ग से वह कभी भी विचलित नहीं होता है। कमल और राजेन्द्र में भिन्नता है। दोनों के आदर्श अलग–अलग हैं। कमल से राजेन्द्र अंशतः भी प्रभावित नहीं होता है। तर्क में राजेन्द्रे हमेशा कमल से आगे रहता है। राजेन्द्र के तर्क से कमल को इस बात का अहसास होता है कि वह न्याय तर्क से काफी दूर है।

शरतचन्द्र एक कर्मठ व्यक्ति थे। उन्होंने भारतीय राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लिया था। अपनी लेखनी ही नहीं, व्यक्तिगत रूप से भी वह देश मुक्ति आंदोलन में शामिल हुए थे।''जब कलकत्ता विद्या मंदिर की स्थापना हुई, सरकारी स्कूलों और कॉलेजों का बहिष्कार करने के लिए, तो महात्मा गांधी ने उसका उद्घाटन किया, सुभाषचन्द्र बोस उसके प्रधानाचार्य बने और वहां शरत बंगला–भाषा के मुख्य अध्यापक बने। रवीन्द्रनाथ ने इस संस्था और असहयोग आंदोलन का विरोध किया, तब पहली बार शरत–रवीन्द्र का विचार वैभिन्य मुखरित हुआ। शरत यह मानते थे कि स्वाधीनता मिलने के बाद सब कुछ मिलना संभव है। कालांतर में गरम–नरम दल में, कांग्रेस विभक्त हो गयी। उनके मित्र देशबन्धु के परिषदों में प्रवेश के प्रस्ताव का सबसे अधिक विरोध बंगाल में ही हुआ, जिसे शरत का संवेदनशील, भावुक हृदय सह न सका। वास्तव में, राजनीति में जो मोटी खाल, चाहिए, वह हमारे कलाकार के पास कहां से आती ? दूसरे पद, धन का लोभ शरत को कभी था ही नहीं। उनके इन्हीं मित्रों ने कौंसिल का सदस्य होने और हावड़ा म्युनिसिपल कमेटी का चेयरमैन बनने

का प्रस्ताव रखा। किन्तु शरत ने उत्तर दिया ''मैं अपनी साधारण साहित्य साधना को, राजनीति का मूल धन बनाना नहीं चाहता।''[4] शरतचन्द्र गांधी जी से काफी प्रभावित थे। अपने एक लेख में वे गांधी जी की तारीफ करते हुए लिखते हैं ''...बातों से नहीं, कामों से। चालाकी के दांव–पेंच से नहीं, सरल–सीधे रास्ते से, स्वार्थ का बोझ लादकर नहीं, सब चिंता, सारा उद्वेग संपूर्ण स्वार्थ जन्मभूमि के चरणों में पूर्ण रूप से बलि देकर।....देश की स्वाधीनता का स्वराज्य, उन्होंने सत्य के भीतर से ही चाहा है, मारकाट करके नहीं लेना चाहा...।''[5] गांधी जी की देशभक्ति पर श्रद्धा रखते हुए भी उन्होंने क्रांतिकारियों (विप्लवियों) के विचारों को भी सराहा है। शरतचन्द्र की सहानुभूति क्रांतिकारी विप्लवियों के साथ भी थी। बंगाल के नवयुकों को वह हमेशा देश भक्ति की प्रेरणा देते थे। अपने एक भाषण में वह कहते हैं ''स्वराज्य की तारीख 31 दिसम्बर निर्धारित हुई थी, मंत्र आया बंगाल के बाहर से, अथवा जितना चरखा बंगाल में उस दिन काता गया, जितनी खादी उस दिन बंगाल में तैयार हुई, जितने बंगाल के लड़कों ने जीवन का सर्वस्व बलिदान किया, उसका जोड़ सारे भारतवर्ष में नहीं है। कारण यह है कि बंगाल के युवक, जितना अपने देश को प्यार करते हैं, उसका एक हिस्सा भी, शायद पंजाब को छोड़कर, भारत में कहीं और खोजे नहीं मिलेगा।.... इसी से वंदेमातरम् मंत्र की सृष्टि इसी बंगाल में हुई।''[6]

इस प्रकार हम 'शरतचन्द्र की स्वाधीनता संबंधी अंर्तदृष्टि' की जांच करे तो कई प्रश्नों को सामने पाते हैं। अपने साहित्य सृजन से एक तरफ जहां वे विदेशी साम्राज्यवाद से लोहा ले रहे थे वही, भारतीय नवयुवकों को संघर्ष की प्रेरणा भी दे रहे थे। एक तरफ जहां विदेशी पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण का विरोध कर रहे थे तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति के गौरवमय इतिहास को निहार भी रहे थे। रूढ़ हो चली परंपराओं का विरोध उन्होंने तीखे शब्दों में किया है। उनकी दृष्टि राजनीतिक स्वाधीनता के साथ–साथ सामाजिक मुक्ति की ओर भी थी।

प्रेमचंद की दृष्टि में स्वराज्य का अर्थ और स्वरूप

प्रेमचंद की दृष्टि में स्वराज्य का अर्थ है किसान और मजदूरों का राज। उनके अधिकांश पात्र किसान–मजदूर और जमींदारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। साहूकार, महाजन आदि सहायक भूमिका में नजर आते हैं। प्रेमचंद की दृष्टि निम्न तबकों की मुक्ति की ओर रही है। प्रेमचंद की दृष्टि में मुक्ति का अर्थ सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक के साथ–साथ अज्ञान और अचेतन से मुक्ति भी है। हंस के सम्पादकीय में उन्होंने लिखा है "कुछ लोग स्वराज आंदोलन से इसलिए घबरा रहे हैं कि इससे उनके हितों की हत्या होगी– इनमें अधिकांश हमारे जमींदार, सरकारी नौकर, बड़े–बड़े व्यापारी और रुपये वाले लोग शामिल हैं। इसमें संदेह नहीं कि स्वराज आंदोलन गरीबों का आंदोलन है। गरीबों की छाती पर दुनिया ठहरी हुई है, यह कठोर सत्य है। हर आंदोलन में गरीब ही आगे बढ़ते हैं – यह भी अमर सत्य है। इस आंदोलन में भी गरीब आगे–आगे हैं और उन्हीं को रहना भी चाहिए।"[7] इस प्रकार प्रेमचंद किसानों–मजदूरों तथा शोषित जनता की मुक्ति को राष्ट्र मुक्ति आंदोलन से जोड़ते हैं। प्रेमचंद की दृष्टि में राष्ट्र मुक्ति आंदोलन के दो पहलू थे, एक तरफ यह सामंतवाद और जमींदारों के विरुद्ध लड़ा जा रहा था तो दूसरी तरफ साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के खिलाफ।

प्रेमचंद ने अपनी आरंभिक रचना 'सोज़ेवतन' से ही अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध शंखनाद कर दिया था। राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत इस संग्रह को राजद्रोह करार दिया गया और पुस्तक को जब्त कर शेष प्रतियों को जला देने का आदेश दिया गया। " 'सोजेवतन' छोटी सी पुस्तक थी। जिसमें पांच कहानियां थीं और कीमत भी पांच आने से अधिक नहीं थी। लेकिन यह वह पुस्तक है, जिसने उन्हें प्रेमचंद बना दिया। ये कहानियां, जैसा कि पुस्तक के नाम से विदित है, देश प्रेम और राष्ट्रीय भावनाओं से भरी हुई थी। इसलिए जनता ने इन कहानियों को बहुत पसंद किया। मुंशी साहब शिक्षा विभाग से संबंधित थे। सोज़ेवतन पर न सिर्फ एतराज हुआ, बल्कि मुलाजमत तक के लाले पड़ गये। खुदा–खुदा करके वह बला टल गयी और उसी के साथ मुंशी साहब की भी काया पलट गयी।"[8] यही नहीं जिलाधीश से प्रेमचंद को

आदेश मिला कि आगे से वे जो कुछ लिखे पहले उनसे रजामंदी ले लें। इस प्रकार बंधनों के बंदिश में होने के कारण प्रेमचंद उन दिनों काफी दुखी थे। उनकी मानसिक स्थिति का पता हम इन शब्दों से जान सकते हैं – "यह तो लेखन रोज का धंधा ठहरा। हर माह एक मजमून साहब बहादुर 'जिलाधीश' की खिदमत में पहुंचे तो वह यह समझेंगे कि मै अपने सरकारी करायज में खयानत करता हूँ और काम सिर पर थोंपा जाएगा। इसलिए नवाबराय मरहूम हुए, उनके पांशोन कोई और साहब होंगे। आप मेरा मजबून किताबत कराने के बाद मुंशी चिराग अली को दे दिया करेंगे।"[9] सोजेवतन के साथ प्रेमचंद के अच्छे–बुरे दोनों अनुभव रहे। 'सोज़ेवतन' से भारतीय कथा साहित्य को प्रेमचंद दिया।

विदेशी शोषित वातावरण में ऐसी विशुद्ध स्वदेशी भावना से ओत–प्रोत कथा लिखना सचमुच एक साहसपूर्ण कार्य था। 'सोज़ेवतन' की भूमिका में प्रेमचंद लिखते हैं "हर एक कौम का साहित्य अपने जमाने की सच्ची तस्वीर होता है। और जो विचार मस्तिष्क में घूमते हैं और जो भाव क़ौम के दिलों में गूंजते हैं, वे गद्य और पद्य में ऐसे सफाई से नजर आते हैं, जैसे आइने में सूरत। हमारे लिटरेचर का आरंभिक दौर वह था, जब लोग गफलत के नशे में मतवाले हो रहे थे उसमें कुछ आशिकाना गजलों और चंद लोक किस्सों के अलावा कुछ नहीं था।

दूसरा दौर वह था, जब क़ौम के नये और पुराने विचारों में जिंदगी और मौत की लड़ाई शुरू हुई और सामाजिक व्यवस्था में सुधार करने की योजनाओं पर ध्यान दिया जाने लगा। इस दौर की कहानियां ज्यादातर सामाजिक सुधार का पहलू लिए हुए हैं। बंगाल के विभाजन ने लोगों के हृदय में विद्रोह का भाव भर दिया था। इसलिए ये विचार साहित्य को प्रभावित करने से कैसे रोक सकते थे ? ये कुछ कहानियां इसी प्रकार की शुरुआत हैं। हमारे मुल्क को ऐसी किताबों की सख्त जरूरत है जो नई नस्ल के ज़िगर पर हुस्ने–वतन (देश–प्रेम) की अजमत का नशा जमाए।" 'सरस्वती पत्रिका' में पहली बार 'सोज़ेवतन' के रूप में किसी उर्दू लिखित पुस्तक को स्थान दिया गया। स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस पुस्तक की काफी प्रशंसा की।

अपने आरंभिक दौर की कहानियों में प्रेमचंद ने राष्ट्रीयता को ही आधार बनाया। 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' में प्रेमचंद लिखते हैं कि क्या है, दुनिया का

सबसे अनमोल रतन ? कारूँ का खजाना, आबेहयात, खुसरो का ताज, तख्ते ताऊस, परवेज की दौलत ? फांसी के फंदे पर कैदी के आंसुओं की दो बूंदें या चिता अग्नि में समर्पित विधवा की राख ? नहीं यह सब कुछ नहीं। दुनिया का सबसे अनमोल रतन है, खून का वह आखिरी क़तरा जो वतन की हिफाजत में गिरे। प्रेमचंद ने स्वाधीनता को जीवन माना है। 'खुचड़' कहानी में वे लिखते हैं–''जीवन स्वाधीनता का नाम है, गुलामी मौत है।''[10] प्रेमचंद पराधीनता के वातावरण में सांस लेने की अपेक्षा मौत को बेहतर समझते थे। वे कहते हैं–''हमारे ऊपर कानून से नहीं, लाठी से राज हो रहा है और हम इतने बेशर्म हैं, कि इतनी दुर्दशा होने पर भी नहीं बोलते। हम इतने स्वार्थी, इतने कायर न होते तो उनकी मजाल थी कि हमें कोड़ों से पीटते। इस तरह हम मार खाते रहेंगे ? तुम्हें भी अपनी इज्जत–आबरू का कुछ ख्याल है? जब इज्जत ही नहीं रही तो क्या करोगे जीकर, क्या इसलिए जी रहे हो कि तुम्हारे बाल–बच्चे इसी तरह लात खाते जाएं ? इसी तरह कुचले जाएं ? छोड़ो यह कायरता।''[11]

'समरयात्रा' संग्रह की प्रायः सभी कहानियां सविनय–अवज्ञा आंदोलन से प्रभावित हैं। ये कहानियां हैं जेल, कानूनी कुमार, पत्नी से पति, लांछन, ठाकुर का कुआं, शराब की दुकान, जुलूस, मैकू, आहुति, होली का उपहार, अनुभव तथा समरयात्रा। 'जुलूस' कहानी का केन्द्रीय विषय स्वाधीनता आंदोलन है। आंदोलनकारियों के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए प्रेमचंद कहते हैं – ''हमें किसी से लड़ाई करने की जरूरत नहीं, हमारा उद्देश्य केवल जनता की सहानुभूति प्राप्त करना है, उनकी मनोवृत्तियों को बदल देना है। जिस दिन हम इस लक्ष्य पर पहुंच जाएंगे, उसी दिन स्वराज्य–सूर्य उदय होगा।''[12] वैसे तो इस कहानी में कई पात्र हैं पर मुख्य रूप से इस कहानी की कथा दो पात्रों के इर्द–गिर्द घूमती है। दारोगा बीरबल सिंह और उसकी पत्नी 'मिट्ठनबाई'। दारोगा जी अंग्रेजी सरकार का कर्मचारी है। उनके ऊपर क्रांतिकारियों को दमन करने का कार्यभार सौंपा जाता है, जबकि मिट्ठनबाई एक देशभक्त है। क्रांतिकारियों के प्रति उनके मन में अपार स्नेह है।

शक्ति के नशे में उन्मत्त दारोगा जी बुरी तरह आंदोलनकारियों को पीटता हैं और अपना घोड़ा उन बेकसूरों पर दौड़ा देता हैं। इससे क्रांतिकारी इब्राहिम की मौत हो जाती है। बीरबल सिंह की पत्नी इस घटना पर अपने पति को कोसती है। वह

कहती है "तुम कम से कम इतना तो कर ही सकते थे कि उन पर डंडे न चलने देते। तुम्हारा काम आदमियों पर डंडे चलाना है ?... कल को तुम्हें अपराधियों को बेंत लगाने का काम दिया जाये, तो शायद तुम्हें बड़ा आनंद आएगा, क्यों?"[13] बीरबल सिंह को पुनः एक 'जुलूस' का दमन करने का हुक्म दिया जाता है। इस पर 'मिट्ठनबाई' व्यंग्य करती हुई कहती है – "फिर तो तुम्हारी चांदी है। तैयार हो जाओ और फिर वैसे ही शिकार मिलेंगे। खूब बढ़–बढ़ाकर हाथ दिखाना.... अबकी तुम इंस्पेक्टर हो जाओगे।"[14] इस कहानी में आंदोलनों के प्रति युगीन जनोत्साह को देखा जा सकता है। एक बुढ़िया बीरबल की तरफ इशारा करती हुई कहती है "मेरी कोख में ऐसा बालक जन्मा होता तो उसकी गर्दन मरोड़ देती।"[15] कहानी का अंत बीरबल के हृदय परिवर्तन से होता है। वह अपने किए पर पश्चाताप करता है।

'जेल' कहानी में प्रेचंद ने स्वाधीनता आंदोलन में स्त्रियों की भूमिका को उद्घाटित किया है। मृदुला अपना सर्वस्व खोकर भी टूटी नहीं है, बल्कि उसमें एक नई शक्ति का संचरण हो जाता है। वह स्वाधीनता संघर्ष में अपने पुत्र को खो देती है। मगर पुत्र की मृत्यु ने भी मृदुला को दुर्बल होने नहीं दिया। "मगर मुझमें अब लेशमात्र भी दुर्बलता नहीं है। मैं चिंताओं से मुक्त हूं। मैजिस्ट्रेट जो कठोर से कठोर दण्ड प्रदान करें, उसका स्वागत करूंगी।"[16]

'होली का उपहार' में एक अलग ही होली का माहौल देखने को मिलता है। 'वंदेमातरम' की ध्वनि हुई। तमाशाइयों में कुछ हलचल हुई। लोग दो–दो कदम और आगे बढ़ आए। स्वयं सेवकों ने दर्शकों को प्रणाम किया और मुस्कराते हुए लॉरी में जा बैठे। अमरकांत सबके आगे थे। लॉरी चलना ही चाहती थी कि एकाएक सुखदा किसी तरफ से दौड़ी आ गयी। उसके हाथ में एक पुष्प माला थी। लॉरी का द्वार खुला था, उसने ऊपर चढ़कर वह माला अमरकांत के गले में डाल दी। आंखों से स्नेह और गर्व की दो बूंदें टपक पड़ीं। लॉरी चली गई। यही होली थी, यही होली का आनंद मिलन था। उसी वक्त सुखदा दुकान पर खड़ी होकर बोली – विलायती कपड़े खरीदना और पहनना देशद्रोह है।"[17]

प्रेमचंद की एक और कहानी है 'सत्याग्रह'। इसमें उन्होंने सत्याग्रह के महत्त्व को दर्शाया है। विरोधी पक्ष चाहे जितना भी जुगत लगा ले पर सत्याग्रह तो सफल होकर ही रहेगा। 'राय हरनंदन साहब', 'राजा साहब' जैसे लोग आंदोलन के विरुद्ध

खड़े हैं। इस आंदोलन को विफल करने और दुकानें खुली रखने के लिए तरह–तरह के हथकंडे अपनाते हैं। पर अंततः जीत सत्य की होती है।

प्रेमचंद के उपन्यासों में स्वाधीनता आंदोलन की गूंज हम 'सेवासदन' से ही पाते हैं। इस उपन्यास में मानो लेखक ने पहले ही दूरद्रष्टा बनकर साम्राज्यवादी नीतियों को भांप लिया था। प्रेमचंद लिखते हैं कि "शिला और कला कौशल का यह महल उसी समय तक है जब तक संसार में निर्बल, असमर्थ जाति है, पर ज्यों ही वे जातियां चौंकेगी, यूरोप की प्रभुत्ता नष्ट हो जाएगी।"[18]

'कायाकल्प' में भी 'राष्ट्रीयता' की भावना को देखा जा सकता है। चमारों से बेगार कराए जाने का विरोध, राजा और अंग्रेजों द्वारा गोलियां बरसाने का विरोध तथा बंदूकें छीनने के लिए निर्भय होकर आगे बढ़ जाना, जेल में कैदियों का संगठित होना आदि लेखक की राष्ट्रीय भावना को उजागर करता है। " 'प्रेमाश्रम' में स्वाधीनता–आंदोलन, कृषक जीवन की विपन्नता और जमींदार वर्ग की शोषण नीति, भूमिपति और कृषक के परंपरागत संबंधों की प्रतिक्रिया से उत्पन्न परिस्थिति, जमींदारी शोषण के विरुद्ध आवाज, कृषक और जमींदार संघर्ष, ग्रामीण समाज के आर्थिक पक्ष आदि पर दृष्टिपात किया गया है।"[19]

'रंगभूमि' में प्रेमचंद ने स्वतंत्रता आंदोलन की प्रारंभिक झलक का आभास दिया है। रंगभूमि में राष्ट्रीय आंदोलन की लड़ाई प्रतीकात्मक ढंग से लड़ी गई है। इस दृष्टि से उपन्यास का नामकरण बड़ा सटीक दिखता है। 'रंगभूमि' की कथा सूरदास के संघर्ष की कथा है। पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधि जॉन सेवक सूरदास से उसकी जमीन छीन लेना चाहता है, क्योंकि वह वहां अपना कारखाना खोलना चाहता है। इसके लिए जॉन तरह–तरह के हथकंडे अपनाता हैं और अपने मकसद में कामयाब हो जाता है। कारखाना लगने से गांव में मजदूर वर्ग का जन्म होता है। ये लोग अपनी पुरानी परंपरा को खो रहे हैं। सूरदास कहते हैं कि ये लोग रोज बस्ती में शोर मचाते हैं। मुहल्ले की लड़की–औरतों को छेड़ते हैं। शराब पीते हैं और सबकी रातों की नींद हराम करते हैं। मजदूरों के लिए मकानों की आवश्यकता पड़ती है तो किसानों से जबर्दस्ती उनकी जमीन, मकान खाली कराये जाते हैं। इस कार्य में अंग्रेज जॉन के साथ हैं। जॉन की मदद के लिए तुरंत पुलिस पहुंच जाती है और बेकसूर किसानों पर अंधाधुंध गोलियां बरसाती हैं जिससे कई लोग मारे जाते हैं और

हजारों घायल होते हैं। पूरे उपन्यास में सूरदास का चरित्र देखने लायक है। डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं – "सूरदास प्रेमचंद के उन पात्रों में हैं जो जिंदगी को संघर्ष समझते हैं और कितनी भी कठिनाइयां पड़े, उनके सामने पीठ दिखाना नहीं जानते।"[20] सूरदास लड़ रहा था और मृत्यु शय्या से पुकार–पुकार कर कह रहा था– "फिर खेलेंगे, जरा दम ले लेने दो। ये भारत की अजेय जनता का स्वर था।"[21] प्रेमचंद ने बड़ी चतुराई से एक साधारण किसान की कथा को राष्ट्रीयता के प्रश्न से जोड़ दिया और एक आम आदमी की नैतिक शक्ति को संगठित समूह के सत्याग्रह में विकसित कर दिया।

'गबन– में एक खटिक जाति के व्यक्ति देवीदीन को स्वदेशी आंदोलन में अपने दोनों पुत्रों को बलिदान करने का सौभाग्य प्राप्त होता है। गबन में सन् 1930 के घटनाक्रम तथा जनता के उत्साह का परिचय मिलता है। प्रेमचंद लिखते हैं– "जिस देश में रहते हैं, जिसका अन्न–जल खाते हैं, उसके लिए इतना भी नहीं करें तो जीने को धिक्कार है।"[22]

गबन उपन्यास में 'बॉयकाट' आंदोलन के प्रभाव को स्पष्ट देखा जा सकता है। प्रेमचंद ने बड़े मार्मिक ढंग से 'बॉयकॉट' के दृश्य को चित्रित किया है– "स्वदेशी का प्रचार करने वाले स्वयंसेवक विदेशी वस्त्र विक्रेताओं की दुकानों के आगे खडे हो जाते थे, और ग्राहकों को हाथ जोड़कर, घिघियाकर, धमकाकर, या नाना प्रकार की उक्तियों से लज्जित करके लौटा देते थे।"[23]

गबन में देवीदीन की स्वदेशी भावना कोई दिखावा नहीं है। स्वदेशी की भावना उसके रोम–रोम में बसी हुई है। अपने पुत्र के बलिदान पर वह तनिक भी विचलित नहीं होता है। बल्कि वह स्वयं भी अपनी जिंदगी देश के नाम करने को तैयार हो जाता है। वह कहता हैं "बेटों को गंगा में बहाकर मैं सीधे बजाजे पहुंचा और उसी जगह खड़ा हुआ, जहां दोनों वीरों की लाश गिरी थी।आठ दिन वहां से हिला तक नहीं। नवें दिन दुकानदारों ने कसम खाई कि विलायती कपड़े अब न मंगवाएंगे। तब पहरे उठा लिए गए। तब से विदेशी दियासलाई भी घर में नहीं लाया।"[24]

स्वदेशी का जो भाव 'रंगभूमि' के सूरदास ने अपने लहू से सींचा था, उसी सिंचित मिट्टी में 'कर्मभूमि' के पात्र अमरकांत, सुखदा, नैना, आदि ने पुष्प अंकुरित किये हैं। सूरदास की लड़ाई को कर्मभूमि के पात्र अंजाम देते हैं। कर्मभूमि पर चर्चा

करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं, "कर्मभूमि हिन्दुस्तान के स्वाधीनता आंदोलन की गहराई और प्रसार का उपन्यास है। यहां आंदोलन एक जबर्दस्त सैलाब की तरह तमाम जनता को अपने अंदर समेट लेता है। विद्यार्थी, किसान, अछूत, स्त्रियां, शिक्षक, व्यापारी, मजदूर सभी इसके प्रभाव में आगे बढ़ चलते हैं।"[25] कर्मभूमि में प्रेमचंद ने एक साथ राष्ट्रीयता के साथ–साथ कई सामाजिक समस्याओं को भी उद्घाटित किया है। डॉ. जैदी लिखते हैं– "शिक्षा की दूषित प्रणाली, हाकिमों और जमींदारों के अत्याचार, धर्म के ठेकेदारों की अमानुषिक नीति, घर की चार दीवारियों में सुलगती हुई विडम्बना, अंग्रेजी–सभ्यता के नशे में डूबी हुई युवा पीढ़ी, शोषक वर्ग और शोषकों के मध्य गठजोड़, गरीबों की नंगी पीठ से उभरती हुई पुलिस के डंडों और कोड़ों की सड़ाप–सड़ाप ध्वनि और बंदूकों से निकलने वाली धांय–धांय की आवाजें, घरों और पाठशालाओं से उठती हुई आग की लपटें और धुएं की चादर ओढ़े हुए केश खोलकर मातम करती हुई औरतें कैसा था वह पराधीन देश और कैसा था वह अन्याय के बल पर टिका हुआ अंग्रेजी शासन। कर्मभूमि की कथा में प्रेमचंद ने अपने युग के राजनैतिक इतिहास को संगठित सा कर दिया है। कर्मभूमि के प्लॉट में सामाजिक शोषण के विरुद्ध विद्रोह का चित्रण है। किस तरह से एक भोली–भाली स्त्री अपनी इज्जत गंवाने पर बदला लेने के लिए वीरांगना बन जाती है, और एक ही वार में गोरों को धराशायी कर देती है। उसके पीछे अमरकांत, सलीम, सुखदा, सकीना, शांतिकुमार के रूप में पूरा देश खड़ा होता है। अछूतों का मंदिर में प्रवेश का सवाल हो, मजदूरों के घर बनाने के लिए जमीन का सवाल हो या लगान का सवाल हो, अब देश के सभी वर्ग आंदोलन के लिए तैयार हैं।

प्रेमचंद के साहित्य में आजादी की लड़ाई के विभिन्न स्तर और रूप दिखाई पड़ते हैं। आजादी का महत्व उन्होंने महात्मा गांधी से नहीं सीखा था। उसे वे पहले से जानते थे। समाजवाद का ज्ञान भी उन्हें भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना के पहले से था। इन कारणों को अगर प्रेमचंद के साहित्य का आधार बनाया जाए तो भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का इतिहास बेहतर ढंग से लिखा जा सकेगा।"[26]

विचारों में क्रमिक विकास– शरतचन्द्र

शरतचन्द्र के विचार उनके लेखनी के जैसे ही साफ हैं। कृत्रिमता और आडम्बरता से दूर। शरतचन्द्र को कवि रवीन्द्रनाथ, बंकिमचन्द्र, काजी नज़रूल इस्लाम के रूप में एक ठोस आधार भूमि मिली थी। इसलिए निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि शरतचन्द्र के विचारों पर इन लेखकों का प्रभाव अवश्य पडा होगा। लेखनी में शरतचन्द्र, रवीन्द्रनाथ के कायल थे। अपने लिखे पत्रों में वह कहते हैं "मुझसे अच्छे उपन्यास और कहानी रवि बाबू को छोड़कर और कोई नहीं लिख सकता।"[27] यही नहीं अपने मामा उपेन्द्रनाथ को एक चिट्ठी में वह लिखते हैं "मुझसे अच्छा मर्मज्ञ, आप के युग में, एक रवि बाबू को छोड़कर और कोई नहीं है। यह मत सोचना, मैं गर्व कर रहा हूँ।.... मेरी धारणा यही है।"[28] स्पष्ट है कि शरतचन्द्र रवीन्द्रनाथ के विचार, लेखनी से काफी प्रभावित थे।

शरतचन्द्र की दृष्टि विशुद्ध मानवतावादी दृष्टि है। एक तरफ वे घोर दरिद्रता, दीनता का वर्णन करते हैं, पर अपने आपको मार्क्सवादी घोषित नहीं करते हैं। हिंसा का प्रबल विरोधी होकर भी वे गांधीवादी नहीं हैं। उनका जीवन दर्शन साफ है "इस विश्व ब्रह्माण्ड में सब कुछ पूर्ण सत्य है। झूठ का अगर कहीं अस्तित्व है, तो वह मनुष्य के मन में है और कुछ नहीं"[29]

अपने विचारों में शरतचन्द्र आदर्शवाद को महत्व तो देते थे किन्तु वे यथार्थ से कभी दूर नहीं हुए। प्रेमचंद की भांति वे स्थूल आदर्शवादी नहीं थे। यही कारण है कि वह विधवा विवाह में विश्वास तो करते हैं पर लेखनी में सत्यता को झुठलाते नहीं हैं। चाहे वह माधवी (बड़ी दीदी) हो या रमा (पल्ली समाज)। ये दोनों पात्र भौतिक सुखों से वंचित रह जाती हैं। शरतचन्द्र के पात्र तपस्या, त्याग किसी जंगल में जाकर नहीं बल्कि अपने जीवन में रहकर अपने जीवन चक्र में करते हैं। कर्मठता की ओर शरतचन्द्र का झुकाव है। पश्चिमी भोग–विलास, पूर्ण भौतिकवादी जीवन–दर्शन के वे बिलकुल समर्थक न थे। उन्हें पता था कि अंग्रेज हमारी संस्कृति को बर्बाद करने पर तुले हैं। वे कहते हैं, "हमारे ऋषि वाक्य कितने ही अच्छे क्यों न हो, वे नहीं स्वीकार करेंगे, क्योंकि इसकी उन्हें जरूरत नहीं। यह उनकी सभ्यता का विरोधी है और वे

अपनी शिक्षा हमें नहीं देंगे यह बात सुनने में बुरी भले ही लगे पर है सत्य और देने पर भी जो भिक्षा है उसे न लेना ही अच्छा है और हमारी सभ्यता के अनुकूल नहीं है तो वह केवल व्यर्थ नहीं है कूड़ा भी है। उनकी तरह हम अगर दूसरों को मारना नहीं चाहते, दूसरे के मुंह का कौर खा जाने को ही अगर चरम सभ्यता नहीं समझते तो मारण मंत्र कितना भी सत्य क्यों न हो, उसके प्रति निर्लोभी लेना ही अच्छा लगता है।''[30] शरत् की यह मान्यता उनके उपन्यासों में रचित स्त्री–पुरुष संबंधों के ज़रिए देखी जा सकती है। उनके उपन्यासों में 'मुक्त यौन संबंधों' के लिए कोई स्थान नहीं है। 'शेषप्रश्न' की कमल इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। शारीरिक पवित्रता से आत्मनिर्मलता कहीं अधिक पवित्र और महत्व रखती है। शरतचन्द्र के वेश्या पात्र इस बात के प्रमाण हैं। समाज के कठोर नियम और आदर्शों को शरतचन्द्र नहीं मानते हैं। उनके सामने ये नियम और आदर्श मनुष्यता को विकृत कर रहे हैं। जीवन–दर्शन के मामले में हम शरतचन्द्र को फ्रायड और सार्त्र के दर्शन से दूर खड़े पाते हैं। सार्त्र और फ्रायड के कुण्ठावादी दर्शन में शरतचन्द्र को विश्वास नहीं हैं। इस मामले में वह भारतीय आदर्शवाद का पल्ला थामें हुए हैं। उनका मत है कि ''गंदा किए बिना भी आधुनिक साहित्य लिखा जा सकता है।'' [31]

इस प्रकार शरतचन्द्र के जीवन–दर्शन में हम सरलता और कोमलता पाते हैं। शरत के पात्र जिस सुंदर ढंग से जीवन–दर्शन का व्याख्यान करते हैं वह बड़े–बड़े दार्शनिकों के यहां दुर्लभ है।

विचारों में क्रमिक विकास– प्रेमचंद

प्रेमचंद के विचार प्रगतिशील है। निरंतर प्रगति की ओर। जिसकी अंतिम परिणति मार्क्सवाद के सागर में जाकर समाहित हो जाती है। प्रेमचंद का विचार कोई एक विशेष दर्शन से प्रभावित नहीं था, बल्कि उनके विचारों में एक क्रमिक विकास देखने को मिलता है। प्रेमचंद को जिंदगी का काफी अनुभव था। कदाचित इन्हीं कारणों से उनके यहां (रचनाओं में) जिंदगी के नाना रंग देखने को मिलते हैं। प्रेमचंद के विचार को उनके चरित्रों के माध्यम से देखा जा सकता है। जिस तरह प्रेमचंद के रचनात्मक शैली के काफी पड़ाव है, उसी तरह प्रेमचंद के विचारों के भी काफी पड़ाव हैं और प्रत्येक पड़ाव जिंदगी की नई कड़वाहट को दर्शाता है। प्रेमचंद के समय में भारतीय समाज आर्थिक रूप से हीन, सामाजिक रूप से क्षीण और राजनैतिक दृष्टि से उथल–पुथल का था। निश्चित रूप से इसका असर जिंदगी जीने के ढंगों पर पड़ रहा था और प्रेमचंद इस पर पैनी दृष्टि रखे हुए थे। प्रेमचंद की रचनाएं भारतीय समाज की विशेषताओं का दस्तावेज हैं।

आरंभ में प्रेमचंद 'आर्य समाज' से बहुत प्रभावित थे, क्योंकि उनके अनुसार यह संगठन समाज सुधार का कार्य कर रहा था। प्रेमचंद की आरंभिक रचनाओं में आर्य समाज के प्रभाव को साफ देखा जा सकता है। वे लिखते हैं "मैं तो आर्य समाज को जितनी धार्मिक संस्था समझता हूं उतनी तहजीबी (सांस्कृतिक) संस्था भी समझता हूँ।....क़ौमी जिंदगी की समस्याओं को हल करने में उसने जिस दूरंदेशी का सबूत दिया है, उस पर हम गर्व कर सकते हैं। हरिजनों के उद्धार में सबसे पहले आर्य–समाज ने कदम उठाया। लड़कियों की शिक्षा की जरूरतों को सबसे पहले उसने समझा। वर्ण व्यवस्था को जन्मगत न मानकर कर्मगत सिद्ध करने का सेहरा उसके सिर है। जातिगत भेद–भाव और खानपान का, छूआछूत और चौके–चूल्हे की बाधाओं को मिटाने का गौरव उसी को प्राप्त है। यह ठीक है कि ब्रह्म समाज ने इस दिशा में पहले कदम रखा, पर वह थोड़े से अंग्रेजी पढ़े–लिखे लोगों तक ही रह गया। इन विचारों को जनता तक पहुंचाने का बीड़ा आर्य समाज ने ही उठाया। अंधविश्वास और धर्म के नाम पर किए जाने वाले हजारों अत्याचारों की कब्र उसने

खोदी, हालांकि मुर्दे को उसमें दफन न कर सका और अभी तक उसकी जहरीली दुर्गंध उड़–उड़कर समाज को दूषित कर रही है। समाज के मानसिक और बौद्धिक धरातल (सतह) को आर्य–समाज ने जितना उठाया है, शायद ही भारत की किसी संस्था ने उठाया हो।''[32] किंतु धीरे–धीरे आर्य–समाज से प्रेमचंद का मोह भंग होने लगा। कारण वही पुराना था, 'हिन्दू–मुस्लिम विवाद'। 1922–27 तक की अवधि में पूरे देश में साम्प्रदायिकता फैल चुकी थी। मुसलमानों ने हिन्दुओं को मुसलमान बनाना शुरू किया, बदले में आर्य समाजी भी चुप न बैठे और तुरंत ही शुद्धि आंदोलन चलाया। स्वामी श्रद्धानंद ने बहुत से मलकानों की शुद्धि की। प्रेमचंद इस पूरी घटना से काफी दुखी थे। उनका विरोध प्रदर्शन 'जमाना' में छपा। इसके छपते ही कुछ लोग उनसे नाराज भी हुए। प्रेमचंद की कहानी 'मंत्र' इस पूरी घटना की पृष्ठभूमि पर ही लिखी गयी है।

प्रेमचंद के विचारों का दूसरा पड़ाव तब शुरू होता है, जब वह महात्मा गांधी के निकट आते हैं। वह अपनी सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे देते हैं। वे कहते हैं ''दुनिया में मैं महात्मा गांधी को सबसे बड़ा मानता हूँ। उनका भी उद्देश्य यही है कि मजदूर और कास्तकार सुखी हों, वह भी उन लोगों को आगे बढ़ने के लिए आंदोलन चला रहे हैं। मैं लिख करके उनको प्रोत्साहन दे रहा हूं। महात्मा गांधी हिन्दु–मुसलमानों की एकता चाहते हैं तो मैं भी हिंदी और उर्दू को मिलाकर हिन्दुस्तानी बनाना चाहता हूँ।''[33] गांधी जी की जीवन–दृष्टि पर भारतीय संस्कृति का गहरा प्रभाव था। गांधी जी के संस्कार और प्रेमचंद के संस्कार लगभग एक ही वातावरण में सांसे ले रहे थे। गांधी जी के नैतिक मूल्यों, राष्ट्रीय प्रेम, समाजवाद के प्रति आग्रह आदि ने प्रेमचंद को काफी प्रभावित किया। गांधी जी द्वारा चलाए जा रहे तत्कालीन आंदोलनों के प्रभाव को प्रेमचंद के साहित्य में साफ देखा जा सकता है। सविनय–अवज्ञा, अहिंसात्मक–सत्याग्रह, ग्रामीण–उद्योग, हिन्दू–मुस्लिम–ऐक्य, मद्यपान–निषेध, नारी–शिक्षा, विदेशी वस्त्र बहिष्कार, आर्थिक समानता आदि ऐसे कुछ मुद्दे हैं जिनको एक ओर समाज में महात्मा गांधी उठा रहे थे और दूसरी ओर साहित्य में प्रेमचंद। त्रिलोकी नारायण दीक्षित लिखते हैं ''राजनैतिक क्षेत्र में गांधीजी ने जिन सिद्धांतों और कार्यक्रमों को प्रस्तुत किया था, उन्हीं की अभिव्यंजना उपन्यासों के माध्यम से प्रेमचंद ने साहित्य में की थी अर्थात् गांधीवाद ही उनके इस प्रचुर साहित्य

का मूलाधार है। प्रेमचंद के बड़प्पन तथा महत्ता का कारण यह है कि उनके साहित्य में गांधी जी के आदर्श और सिद्धांत लहरे ले रहे हैं। इसी कारण हमारे हिन्दी के कुछ आलोचकों ने प्रेमचंद को हिन्दी साहित्य का गांधी भी कहा है।''[34]

प्रेमचंद ने गांधीवादी दर्शन को पूर्णरूप से एकाकार नहीं किया था। वह मूलतः एक मानवतावादी लेखक थे। मानवीय–मूल्यों की रक्षा–कदाचित उनके साहित्य का मुख्य ध्येय था। इसी कारण कुछ समीक्षक जहां उन्हें गांधीवादी कहते हैं, वहीं कुछ प्रगतिवादी और कुछ जनवादी। वे स्वयं कहते हैं '' मैं गांधीवादी नहीं हूँ, केवल गांधीजी के 'चेंज ऑफ हार्ट' में विश्वास करता हूँ।''[35]

''गांधी–दर्शन में आस्था होते हुए भी उन्होंने कहीं भी उसके प्रति अनावश्यक, विवेकहीन उत्साह नहीं दिखाया है। गांधी दर्शन में अहिंसा–संबंधी अतिवादों को प्रेमचंद ने सदैव अपनी यथार्थ दृष्टि द्वारा अनुशासित रखा है और उसकी आध्यात्मिकता को ठोस बौद्धिक–सिद्धांतों द्वारा।''[36]

प्रेमचंद के विचारों में तीसरा पड़ाव तब देखने को मिलता है जब वे अपनी आदर्शवादी दृष्टि को पीछे छोड़कर यथार्थपरक होते चले जाते हैं। प्रेमचंद के आलोचक इस पड़ाव को मार्क्सवादी रुझान से जोड़ते हैं। मार्क्सवाद एक समाजवादी दर्शन है, जो परस्पर विरोधी हितों वाले वर्ग–विभक्त समाज में दलित–शोषित बहुसंख्यक वर्ग की मुक्ति में ही समाज की वास्तविक मुक्ति मानता है। ये सारी बातें प्रेमचंद के जीवन–दर्शन में पहले से ही मौजूद थीं। आरंभिक लेखन से ही प्रेमचंद शोषित–उत्पीड़ित और गरीब जनता की बातें करते हैं। किन्तु अपनी अंतिम रचनाओं में (इन चीजों का काफी सशक्त वर्णन किया है) प्रेमचंद की वाणी में दलित, पीड़ित तथा शोषितों की वाणी एक विस्फोट बनकर उभरी है। कदाचित इन्हीं कारणों से प्रेमचंद के आलोचक उनके विचारों में आयी इस विकास को मार्क्सवाद की प्रतिध्वनियों से जोड़ते हैं।

प्रेमचंद के पात्र सामाजिक परिवर्तन और संघर्ष की बात करते हैं। प्रेमचंद की यह वर्ग चेतना 1936 तक आते–आते 'महाजनी सभ्यता' निबंध में समाजवादी चेतना का रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार का परिवर्तन एक लम्बे विकास क्रम का परिणाम है। प्रेमचंद एक ऐसे समाज का स्वप्न देख रहे थे जहां न कोई राजा होगा न कोई प्रजा।'' अब क़ौम में अमीर और गरीब, जायदाद वाले और भरभुखे,

अपनी–अपनी जमाआतें बनायेंगे। उनमें कहीं ज्यादा खूँरेज़ी होगी, कहीं ज्यादा तंगदिली होगी। आखिर एक–दो सदी के बाद दुनिया में एक सल्तनत हो जायेगी। सबका एक कानून, एक निजाम होगा, क़ौम के खादिम क़ौम पर हुकूमत करेंगे। न कोई राजा होगा न प्रजा।''[37]

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं की 'शरतचन्द्र और प्रेमचंद के विचार' में मुख्य है 'मानवतावादी दृष्टि'। ये लेखक किसी विशेष विचारधारा से प्रभावित नहीं थे। समय और समाज के साथ–साथ इनके विचारों में भी परिवर्तन आता चला गया। अतः इनके विचारों को हम एक विकासक्रम के रूप में ही देख और समझ सकते हैं। आरंभ में प्रेमचंद का झुकाव आर्य समाज की ओर अवश्य था, किन्तु धीरे–धीरे वह आर्य समाज के खोखलेपन को समझ चुके थे।

प्रेमचंद और शरतचन्द्र दोनों ही लेखक सर्वहारा वर्ग की दीनता, दरिद्रता और शोषण की बात करते हैं, पर ये पूर्णतः मार्क्सवादी भी नहीं थे। हिंसा के विरोधी होते हुए भी दोनों लेखक अपने आप को गांधीवादी विचारधारा से पृथक रखते हैं। आदर्शवाद की तरफ झुकाव होते हुए भी ये दोनों लेखक कभी भी यथार्थ से विमुख नहीं हुए हैं। कर्मठता पर विश्वास करने वाले शरतचन्द्र और प्रेमचंद ने कभी भी भाग्यवाद का साथ नहीं दिया है। इनके पात्र इसी धरती के प्रतीत होते हैं, जिनमें श्रद्धा, त्याग और संवेदना के साथ–साथ ईर्ष्या, ग्लानि और शंका आदि सभी कुछ विद्यमान है।

प्रेम एवं यौन संबंधों को लेकर दोनों लेखकों के बीच हम कुछ भिन्नता अवश्य पाते हैं। एक तरफ जहां प्रेमचंद ने प्रेम की पारंपरिक दृष्टि को भव्य रूप में उद्घाटित किया है, वहीं शरतचन्द्र 'मुक्त यौन संबंधों' की बात करते हैं। यद्यपि यह बात भी ध्यातव्य होनी चाहिए कि शरतचन्द्र को कुण्ठावादी दर्शन में विश्वास नहीं था।

---

[1] इन्द्रनाथ मदान,शरतचन्द्र, चिंतन व कला : पृ. 3
[2] इन्द्रनाथ मदान,शरतचन्द्र, चिंतन व कला : पृ. 6
[3] वक्तव्य सारांश उदृधृत, डॉ. श्री कुमार बंधोपाध्याय, बंग साहित्ये उपन्यासेरधारा, चतुर्थ संस्करण, पृ. 236
[4] ले. डॉ. कुतल कुमारी,श्रीमती चन्द्र किरण सौनरेक्ष एवं शरतचन्द्र के नारी पात्रः एक तुलनात्मक अध्ययन। पृ. 119
[5] विष्णु प्रभाकर, आवारा मसीहा, पृ. 257

[6] ले. डॉ. कुतल कुमारी, श्रीमती चन्द्र किरण सौनरेक्ा एवं शरतचन्द्र के नारी पात्रः एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 119
[7] सं. प्रेमचंद हंस, मार्च– 1930
[8] हंसराज रहबर, प्रेमचंद जीवन और कृतित्व, पृ. 52–53
[9] कमल किशोर गोयनका, कलम का मजदूर : प्रेमचंद, पृ. 59
[10] प्रेमचंद,मानसरोवर, भाग–6,पृ. 106
[11] प्रेमचंद,मानवरोवर, भाग–7 पृ. 71
[12] प्रेमचंद,समरयात्रा, पृ. 84
[13] प्रेमचंद,समरयात्रा, पृ. 48
[14] प्रेमचंद,समरयात्रा, पृ. 85
[15] प्रेमचंद,समरयात्रा, पृ. 87
[16] प्रेमचंद,समरयात्रा, पृ. 16
[17] प्रेमचंद,समरयात्रा, पृ. 114
[18] प्रेमचंद,सेवासदन, पृ. 155
[19] डा. इन्द्र मोहन सिन्हा, प्रेमचंद युगीन भारतीय समाज, पृ. 38
[20] डा. रामविलास शर्मा, प्रेमचंद और उनका युग, पृ. 75
[21] डा. रामविलास शर्मा,प्रेमचंद और उनका युग, पृ. 80
[22] प्रेमचंद,गबन, पृ. 170
[23] प्रेमचंद,गबन, पृ. 170
[24] प्रेमचंद,गबन, पृ. 171
[25] डा. रामविलास शर्मा, प्रेमचंद और उनका युग, पृ. 81
[26] सं. शेखर दयाल सिंह, प्रेमचंद शताब्दी : शताब्दी विरोधी व्याख्या, सतीश राज पुस्करणा, प्रेमचंद स्मृति धरोहर,
[27] शरत पत्रावली, 4 अप्रैल 1913, रंगून, पृ. 13
[28] वही, 22 अगस्त, 1913 पृ. 11
[29] शरतचंद्र, श्रीकांत, भूमिका, पृ. 30
[30] सं. विश्वनाथ मुखर्जी, शरत समग्र–2,पृ. 632
[31] वेणु के सं. शरत पत्रावली, श्री भूपेन्द्र किशोर रक्षितराय को लिखित पत्र, पृ. 118
[32] डॉ. इन्द्रोमोहन कु. सिन्हा,प्रेमचंद युगीन भारतीय समाज, पृ. 13
[33] राजीव सक्सेना प्रेमचंद और प्रगतिशील लेखन, प्रेमचंद और गांधी, लेखक,
[34] त्रिलोकी नारायण दीक्षित,प्रेमचंद, पृ. 162
[35] राजेश्वर गुरु,प्रेमचंद एक अध्ययन, पृ. 101
[36] लेख–प्रेमचंद : एक सर्वेक्षण, डॉ. नगेन्द्र, प्रेमचंद : चिंतन और कला पृ. 184
[37] प्रेमचंद कर्मभूमि, पृ. 117